नई दिशा में उठते कदम

सुहास कुमार

दिल्ली के एक शानदार इलाके बसंत बिहार के पास बसी है एक बस्ती "कुसुमपुर पहाड़ी।" वहां हज़ारों की संख्या में हैं झुग्गियां और उनमें बसती जिंदगानियां। वैसे तो यह आम बस्तियों की ही तरह है। मगर यहां एक खास बात हुई है जिसने इसे और बस्तियों से अलग खड़ा कर दिया है। इसी बात का आकर्षण मुझे वहां तक खींच ले गया।

जब सुबह के 11 बजे हम वहां पहुंचे तो ज़्यादातर औरतें अपने सुबह के काम करके लौट आईं थीं। वह पास के बंगलों-कोठियों में बर्तन धोने, सफ़ाई आदि का काम करती हैं। अब उनके घर का काम शुरू हो गया था। कोई कपड़े धो रही थी, कोई खाना बना रही थी तो कोई सौदा-सुल्फ लेने गई हुई थी।

बस्ती की औरतों के साथ उनकी कठिनाइयों, समस्याओं को समझकर मार्ग सुझाने वाली बहनों में एक हैं रंजना सबरवाल। मैं उन्हीं के साथ बस्ती में गई थी। वह सीधे मुझे 'क्रेश' में ले गईं। उस समय क्रेश में 8-10 बच्चे थे जो टिफिन खा रहे थे—सूखे चावल या रोटी।

क्रेश, एक वरदान

रंजना ने बताया कि बस्ती की एक बहुत दीगर और समझदार औरत है सोनिया। सोनिया ही यह क्रेश चलाती है। शुरू में यह सामूहिक प्रक्रिया के रूप में शुरू हुआ था कि बारी-बारी से औरतें बच्चों की देखभाल किया करेंगी। मगर धीरे-धीरे सारी ज़िम्मेदारी सोनिया के कंधों पर आ गई। इस समय क्रेश में 16 बच्चे हैं। क्रेश में 2-3 साल से लेकर 7-8 साल तक के बच्चे हैं। उस समय सोनिया की 12 साल की लड़की बच्चों को देख रही थी और सोनिया बस्ती के कुछ बच्चों का दाखिला कराने स्कूल गई हुई थी। जब वह वापस आई तो काफ़ी खुश थी। 4 बच्चों को स्कूल में दाखिल करा आई थी।

सोनिया बताने लगी—मांएं बड़े बच्चों को भी क्रेश में छोड़ जाती हैं। अब, छोटे बच्चों को देखूं कि बड़ों को पढ़ाऊं। मांओं से पूछो कि स्कूल क्यों नहीं भेजतीं तो कहती हैं बच्चों के बाप को फुरसत ही नहीं मिलती है। खुद अनपढ़ होने की वजह से स्कूल जाते हिचकिचाती हैं। उन्हें अपने पर इतना भी भरोसा नहीं है कि वह वहां ठीक से बात कर पाएंगी।

सोनिया से मैंने पूछा—"क्रेश क्यों खोला?" उसका उत्तर था, "घर की बड़ी लड़कियां स्कूल जा सकें। छोटे भाई-बहनों की देखभाल की, घर में मां के काम में हाथ बटाने की जिम्मेदारी घर की बड़ी लड़कियों पर आ जाती है। अब मांएं छोटे बच्चों को छोड़कर निश्चिंत होकर काम पर जा सकती हैं।"

क्रेश में सुबह 7 बजे से 10.30 तक ज़्यादा बच्चे रहते हैं। 11 बजे तक ज़्यादातर मांएं बच्चों को ले जाती हैं। सोनिया को फी बच्चा 10 रु० मिलता है। शुरू में स्थापित

करने में कुछ मदद के अलावा सोनिया को कोई मदद नहीं मिलती है।

मगर हम सोनिया के क्रेश के बारे में बात करने नहीं गए थे। हमें पता चला था कि यहां की औरतों ने यूनीसेफ की एक स्कीम के तहत् हैंडपंप की मरम्मत का काम सीखा है और वे ही अब बस्ती के 23 हैंडपंपों के रख-रखाव का काम करती हैं।

हैंडपंप मरम्मत ट्रेनिंग

शुरू की ट्रेनिंग सख्त गर्मी में हुई। जून का महीना, कड़कती धूप। पहले ही दिन एक साल से खराब पड़ा पंप खोला गया। रात के बारह बजे तक औरतें उससे जूझती रहीं और ठीक करके ही दम लिया। उनकी खुशी का वारापार न था।

शुरू में कुसुमपुर पहाड़ी की 25 और कनकदुर्गा की 6 औरतें उससे जुड़ीं। लेकिन धीरे-धीरे उससे कटती गईं। कारण अनेक थे। मगर खास यह था कि जितना पैसा वह सोच रहीं थीं उतना मिला नहीं। तय यह हुआ था कि 4 महीने तक उन्हें 25 रु० प्रति पंप के हिसाब से मिलेगा। सबमें बंटने पर वह रकम बहुत ही कम थी। उन्हें एक लालच यह भी था कि शायद सरकारी नौकरी मिल जाएगी।

उन्हें डी.डी.ए. के तहत् काम करना होता है। पहले जो लेबर काम करती थी उनके हेड मिस्त्री को 39 रु० और लेबर को 29 रु० के हिसाब से दिहाड़ी मिलती थी। उन्होंने सोचा कम से कम 29 रु० दिहाड़ी उन्हें भी मिलेगी।

अंत में सिर्फ 6 महिलाएं बचीं। सोनिया,

संतोष, सुबलक्ष्मी, भारती, पिंगला और गुलाब। सोनिया हाईस्कूल पास है। सुबलक्ष्मी कक्षा 8 तक पढ़ी है। बाकी सभी अनपढ़ हैं।

एक चुनौती

संतोष और सुबलक्ष्मी ने बताया कि पहले तो हम रोज़गार के लालच से ही जुड़े थे। बाद में यह काम हमारे लिए एक चुनौती बन गया। पड़ोसियों के ताने भी कम नहीं सुनने पड़े। "जब हम घरों से निकल कर पंप तक जातीं तो लोग कहते—ये बड़ी इंजीनियर बनेंगी। इनसे घर तो संभलता नहीं है। पहले घर संभालें, फिर कुछ और करें। बड़े जोश से निकली हैं। क्या यह इनके बस का काम है?" आदि-आदि।

इनको यह भी लगा कि यदि वे यह काम सीख लेंगी तो पानी की दिक्कत भी दूर हो जाएगी। मरम्मत के लिए डी.डी.ए. का मुंह देखना पड़ता है। कभी तो वह जल्दी आ जाते थे कभी महीनों पंप खराब पड़ा रहता था। फिर पानी दूर से लाना पड़ता था।

सोनिया ने बताया इस समय बस्ती के सभी पंप ठीक चल रहे हैं सिर्फ एक को छोड़कर। हमारे सामने ही उन्होंने दो तीन बार एक दूसरे को याद दिलाया कि कल सुबह वह पंप खोलना है। हमने पूछा ठीक होने में कितना वक्त लगेगा। "सुबह 7 बजे खोलेंगें। सारा दिन तो लग ही जाएगा।" हमने पूछा— "मरम्मत में अगर कोई हिस्सा बदलना हो तो कहां से आता है।" उन्होंने बताया वह डी.डी.ए. के दफ्तर से मिलता है।

उन्हें प्रति पंप 25 रु० महीने के हिसाब से ही अभी तक मिल रहा है। छह लोगों में बंटकर हर एक के हिस्से में 88 रु० 50 पैसे आते हैं। पैसा अभी चाहे ज्यादा न मिल रहा

हो पर उन्हें विश्वास है कि उनकी तनख्वाह ज़रूर बढ़ेगी। इस संबंध में वह एक बार स्लम कमिश्नर से भी मिल चुकी हैं। दुबारा मिलने की बात इसी हफ्ते थी।

चाहे पैसा उन्हें अभी कम मिल रहा हो, पर उनका कहना था, "हमें बहुत कुछ मिला है। हमने पहला पंप जो मरम्मत किया वह 9 महीने तक ठीक चला।" बस्ती वालों का रवैया बिलकुल बदल गया है। उन्हें पूरा भरोसा है कि हम पंप ठीक कर लेंगी। सबसे बढ़कर उनका अपने ऊपर आत्मविश्वास बढ़ा है।

एक कहती है, "हमें लगता है कि मौका मिले तो हम कुछ भी कर सकती हैं।" अब प्लम्बिंग और राजमिस्त्री के काम की ट्रेनिंग की बात चल रही है। यह सब उसे करने की सोच रही हैं। "हर पंप की मरम्मत से हमें कुछ नया सीखने को मिलता है।"

बात धीरे-धीरे पढ़े-लिखे और अनपढ़ होने पर आ गई। यह सभी शिक्षित होने के महत्व को समझती हैं। उन्होंने बताया कि पास में डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल में इतवार को प्रौढ़ शिक्षा की कक्षाएं लगने की बात सुनकर बस्ती की कुछ औरतें गईं। चूंकि वह अंग्रेजी में बात नहीं कर सकती थीं, बात समझ नहीं सकती थीं उनके फार्म उठाकर फेंक दिए गए। फिर वह रंजना की ही तरह काम कर रही अनीता बहन को साथ ले गईं। तब जाकर उन्हें दाख़िला मिला।

सोनिया का तो बस्ती में मान है ही। इन छहों महिलाओं की भी बस्ती में एक ख़ास जगह है। □